

मातृत्व हक के बिना कैसे अच्छे दिन!

सचिन कुमार जैन

वर्ष 2001 से 2011 के बीच हुई जनसँख्या वृद्धि के हिसाब से हर साल भारत में लगभग 1.9 करोड़ प्रसव होते हैं, मौजूदा मातृ मृत्यु अनुपात 178 है. जिसके हिसाब से हर साल लगभग 34 हजार महिलायें प्रसव से सम्बंधित कारणों से अपना जीवन खो देती हैं. इतना ही नहीं विश्व बैंक के मुताबिक हर 190 में एक महिला की मृत्यु का कारण मातृत्व से सम्बंधित जोखिम होता है. इसका मतलब यह है कि हमारे यहाँ महिलाओं को उनके मौलिक मातृत्व हक नहीं मिल रहे हैं. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून में 30 शब्दों में एक प्रावधान है, जो देश में 39 करोड़ महिलाओं, खासतौर पर असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली और अपने घरों को चलाने का “बिना पारिश्रमिक वाला” श्रम करने वाली महिलाओं को ऐसा हक देता है, जिसके बारे में सरकारें और समाज का रवैया उपेक्षा और भेदभाव से भरपूर रहा है. यह प्रावधान प्रत्येक गर्भवती स्त्री और स्तनपान करने वाली माता को कम से कम छह हजार रूपए का ऐसी किशतों में प्रसूति फायदा दिए जाने की व्यवस्था करता है. यह एक शुरुआत भर है. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मुताबिक महिला को कम से कम 14 सप्ताह का आर्थिक लाभ के साथ अवकाश, बच्चे के पालन के लिए हर रोज नियमित अंतराल पर काम से विराम, स्वास्थ्य की जांच और सुरक्षा मिलना चाहिए. इसे ही मातृत्व हक माना जायेगा.

महिला हकों के लिए संघर्षरत संगठन यह साबित कर चुके हैं कि हर महिला कामकाजी है, फिर वह चाहे आय अर्जित करने के लिए श्रम करे या फिर परिवार-घर को चलाने-बनाने के लिए. इस हिसाब से मातृत्व हक हर महिला का हक है. राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के मुताबिक 15 से 49 वर्ष की 59 प्रतिशत महिलाओं का मुख्य कार्य घरेलू कामकाज है, जबकि घर का प्रबंधन केवल 0.4 प्रतिशत पुरुषों का ही यह मुख्य काम है. मतलब स्पष्ट है कि घरों में श्रम का इसलिए कोई मोल नहीं आँका जाता है क्योंकि वह काम पुरुष नहीं, बल्कि महिलायें करती हैं. माउंटेन रिसर्च जर्नल में दो साल पहले उत्तराखंड के गढ़वाल हिमालय अंचल का एक अध्ययन प्रकाशित हुआ था. इसका विषय था – परिवार की खाद्य और आर्थिक सुरक्षा में महिलाओं का योगदान. इस अध्ययन के दौरान पहाड़ी क्षेत्र के महिलाओं ने अध्ययनकर्ताओं से कहा कि वे कोई काम नहीं करती हैं, पर जब विश्लेषण किया गया तो पता चला कि परिवार के पुरुष औसतन 9 घंटे काम कर रहे थे, जबकि महिलाएं 16 घंटे काम कर रही थीं. यदि सरकारी दर पर उनके

काम के लिए न्यूनतम भुगतान किया जाता तो पुरुष को 128 रूपए और महिला को 228 रूपए प्राप्त होते. पता चला कि समाज में महिलाओं द्वारा जंगल से लकड़ी लाना, पशुधन के लिए चारा इकठ्ठा करना, बच्चों के देखभाल करना, पानी भरना; ये कोई महत्वपूर्ण काम नहीं माने जाते हैं, क्योंकि इनके लिए कोई खर्चा नहीं किया जाता है, जबकि ये सभी काम कौशलपूर्ण काम हैं और भारी शारीरिक श्रम मांगते हैं. जब इनमें से कुछ कामों की कीमत का आंकलन (कि यदि किसी व्यक्ति को इस काम के लिए पारिश्रमिक का भुगतान किया जाए या सामग्री बाजार से खरीदी जाए) किया गया तो पता चला कि लकड़ी, चारे, शहद, पानी और सब्जी लाने के लिए साल भर में उस परिवार को 34168 रूपए का खर्चा करना पड़ता. चूंकि यह काम घर की महिला बिना पारिश्रमिक कर रही है, इसलिए उस काम को बे-मोल काम मान लिया जाता है. इस महिला को भी मातृत्व हक चाहिए, ताकि वह प्रजनन के चरणों से जुड़े दबावों से उबार कर स्वस्थ और सम्मानजनक स्थिति हासिल कर सके.

भारत में स्त्रियों की जिंदगी एक काल्पनिक कहानी से कहीं कम नहीं पड़ती. स्त्री सम्मान और अस्मिता की सांस्कृतिक पहल करने वाला समाज कभी भी उसके मातृत्व हकों का सम्मान करता हुआ दिखाई नहीं देता. उसका गर्भवती होना एक स्वाभाविक प्राकृतिक और सामाजिक घटना है, जो समाज को गतिशीलता प्रदान करती है. इसके लिए औरत का जीवन हमेशा और हमेशा के लिए दाँव पर होता है. प्रजनन की इस क्रिया को पितृसत्तात्मक समाज बहुत महत्वपूर्ण मानता है, पर हमारी सरकारें औरतों को इसके लिए जरूरी अधिकार देने की बहस में अक्सर औरतों के हितों के खिलाफ खड़ी दिखाई देती हैं. आज जबकि जनांदोलनों से लेकर चुनाव तक की प्रक्रिया में एक बेहतर समाज का सपना दिखाया जा रहा है, वहाँ प्रश्न यह है कि क्या महिलाओं को मातृत्व हक दिए बिना एक अच्छे दिन की भी कल्पना की जा सकती है?

मातृत्व हक का मतलब है उन्हें काम से ऐसी छुट्टी मिलना, जिसके लिए उन्हें आर्थिक सहायता मिले या कामकाजी महिलाओं को उनका वेतन मिलता रहे, उन्हें आराम मिलना और जरूरी स्वास्थ्य की सेवाओं की उपलब्धता. इसके साथ ही यह देखते हुए कि हर पांच में से तीन महिलायें खून की कमी की शिकार हैं, उन्हें पोषण का हक मिलना भी एक अनिवार्यता माना जाना चाहिए. अब तक भारत में केवल उन महिलाओं के लिए ही मातृत्व हकों के प्रावधान रहे हैं, जो संगठित क्षेत्र में काम कर रही हैं. उनके अलावा हर महिला हकों से बेदखल रही है. भारत में एक बहुत ही प्रगतिशील मातृत्व हक कानून वर्ष 1961 में बना था, इस कानून के मुताबिक हर कारखाने, खदान, दुकान में काम करने वाली महिला को मातृत्व हक मिलना चाहिए. भेदभाव देखिये कि केंद्र सरकार में काम करने वाली महिला को 6 महीने का मातृत्व अवकाश मिलता है और बच्चे के 18 वर्ष का होने तक वह उसकी देखभाल के लिए 2 वर्ष का अवकाश

लेने की हकदार होती है. इसके साथ ही यदि गर्भपात होता है तो महिला को 45 दिन का सवैतनिक अवकाश मिलता है. पर मातृत्व हक कानून असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को अधिकतम 12 सप्ताह के अवकाश का ही प्रावधान करता है. उस पर भी तुरा यह कि इसके कहीं कोई निगरानी नहीं होती कि क्या वास्तव में महिलाओं को मातृत्व अवकाश मिल रहा है या उन पर दबाव डाल कर उनसे “काम” छुड़वा दिया जा रहा है. निजी क्षेत्र में ऐसी परिस्थितियां निर्मित कर दी जाती हैं कि महिलाओं को खुद काम छोड़ने का निर्णय ले लेना पड़ता है. ऐसा नहीं है कि आज सरकार खुद शोषण में शामिल नहीं है. नगर निगम से लेकर स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा तक के क्षेत्र में अब कहीं भी महिलाओं को स्थायी कर्मचारी के रूप में न रख कर संविदा या अनुबंध पर रखा जा रहा है. वे एक ही स्थान पर 10 सालों से काम कर रहे हैं, परन्तु नियोक्ता उन महिलाओं के मातृत्व हकों को खारिज करने की हर संभव कोशिश करते हैं. वर्ष 2012-13 में रोजगार गारंटी योजना में 73.94 करोड़ दिन का काम महिलाओं ने किया, पर कई गर्भवती महिलायें प्रसव के 40 घंटे पहले तक श्रम करती रहीं. कई महिलायें प्रसव से 72 घंटे बाद ही काम पर आ गयीं; क्योंकि न तो उन्हें मातृत्व हक के तहत आर्थिक लाभ मिलता है, न ही अवकाश. यह स्थिति महिला और बच्चे दोनों के जीवन को खतरे में डालती है.

असंगठित क्षेत्र में काम करने वालों के लिए बने राष्ट्रीय आयोग ने (2007) में अपनी रिपोर्ट में बताया कि भारत में कुल 14.8 करोड़ कामकाजी महिलायें हैं, इनमें से 14.2 करोड़ असंगठित क्षेत्र में काम करती हैं. इसका मतलब यह है कि 95.94 प्रतिशत कामकाजी महिलाओं के लिए अधिकार सुनिश्चित ही नहीं हैं. अब बड़ी चुनौती यह है कि 10.69 करोड़ महिलायें तो कृषि और उससे जुड़े कामों में संलग्न हैं. एक तरह से इस क्षेत्र के तो मातृत्व हक कानून में भी मान्यता नहीं है, यानी महिला खेतिहर मजदूर पर प्रसव और उससे जुड़ी जटिलताओं के कारण मरने की बहुत ज्यादा संभावनाएं हैं, क्योंकि वे गरीब भी हैं और कानूनी हकों से वंचित भी.

बहुत साधारण सी बात है कि मातृत्व हक एक अनिवार्यता है, इसलिए दूसरा प्रश्न यह है कि यदि कोई महिला किसी भी रूप में आय अर्जित करने के लिए काम नहीं कर रही है, तो क्या उसे मातृत्व हक से वंचित किया जायेगा? इससे जुड़ा हुआ सवाल यह है कि क्या अपने घर का काम करना श्रममूलक काम नहीं है? महिलाओं और श्रम के संबंधों पर होने वाले प्रशिक्षण में प्रतिभागियों से अक्सर यह सवाल पूछा जाता है कि आपके घर में सबसे पहले सुबह सोकर कौन उठता है और सबसे आखिर में कौन सोने जाता है? जवाब होता है – घर की कोई महिला! जिनके यहाँ खेती का काम है, वहाँ कमर से शरीर को मोड़ कर धान की रोपाई कौन करता है? अब अपने परिवार के खेत में काम करने के लिए तो महिला को कोई

मजदूरी मिलती नहीं है, तो क्या वह बे-कामकाजी मानी जायेगी? अब सोचिये कि क्या जो महिलाएं घर के या घरेलू व्यवसाय में भूमिका निभाती हैं, उन्हें मातृत्व हक से वंचित क्यों रखा जाता है!

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के मुताबिक हर महिला को मातृत्व हक के रूप में कम से कम 6 हजार रूपए की आर्थिक सहायता पाने का अधिकार है, लेकिन यह राशि न्यायोचित प्रतीत नहीं होती है. वास्तव में इस हक के तहत न्यूनतम मजदूरी के मान से ने माह का सवैतनिक अवकाश मिलना चाहिए ताकि वे प्रसव के तीन माह से पहले से लेकर बच्चे के छह माह का हो जाने तक काम पर जाने के लिए मजबूर न हों.

अब हमारी सरकार को संविधान के मूल अधिकारों के अनुच्छेद 15 (1 और 3), जिसमें लिंग के आधार पर भेदभाव न करते हुए महिलाओं के लिए विशेष उपबंध की व्यवस्था एवं अनुच्छेद 42 में प्रसूति सहायता प्रावधान के मुताबिक सार्वभौमिक मातृत्व हक की व्यवस्था करके लैंगिक भेदभाव और मातृत्व असुरक्षा को खत्म करने की पहल करना होगी. यह काम कठिन इसलिए है क्योंकि नीति बनाने वाले एक बड़े तबके को यह महत्वहीन काम लगता है. भारत सरकार के आर्थिक मसलों की समिति ने इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना का विस्तार इसलिए नहीं होने दिया क्योंकि उन्हें लगा कि यह सरकार के संसाधनों की बर्बादी है. मातृ मृत्यु के अभिशाप को खत्म करना और मातृत्व हक का सम्मान करना, हमारी व्यवस्था चलाने वालों ने सीखा ही नहीं है. उन्हें तो “तात्कालिक लाभ के लिए व्यापार” करना आता है.

शर्तों के जाल में मातृत्व हक

सचिन कुमार जैन

यदि एक मजदूर महिला गर्भवती है तो क्या उसे निश्चित समय का आराम नहीं मिलना चाहिए? यदि वह आराम करे, तो उसे मजदूरी से वंचित कर दिया जाना चाहिए? यदि मजदूरी न हो, तो क्या उसे पोषण मिल पायेगा? क्या पोषण मिलना जरूरी नहीं है? प्रसव के बाद छह माह तक बच्चे को माँ का दूध और संवेदनशील देखभाल की जरूरत होती है; यदि 15 दिन के बच्चे के साथ महिला काम पर जाए, तो क्या माँ-बच्चे, यानी दोनों की स्थिति सुरक्षित रहेगी? यानी कम से कम छह माह तक माँ को लंबी अवधि के कठोर श्रम से छुट्टी चाहिए ही होगी. यदि हम ये मातृत्व हक सुनिश्चित नहीं कर पाते हैं, तो महिलाओं के लिए हम एक बुरा और अमानवीय समाज माने जायेंगे. महिलाओं के लिए अच्छे दिन लाने में सार्वभौमिक मातृत्व हकों की कानूनी व्यवस्था स्थापित करना ही होगी. दुखद यह है संस्कृतिसंपन्न भारत देश में सरकारें इस संवेदनशील जरूरत को पूरी तरह से नजरंदाज करती रही हैं.

यही भारत, नाइजीरिया के साथ मिलकर प्रसव से जुड़ी जटिलताओं के कारण होने वाली मौतों का जो आंकड़ा बनाता है, वह दुखद है. इन दोनों देशों में मिलकर दुनिया की एक तिहाई मातृ मृत्यु होती हैं. संयुक्त राष्ट्र संघ की एक ताज़ा रिपोर्ट (2014) के मुताबिक वर्ष 2013 में दुनिया में 2.89 लाख महिलाओं की प्रसव और शिशु जन्म के समय जटिलताओं के कारण मृत्यु हुई. इनमें से 1.79 लाख (62 प्रतिशत) मृत्यु सब-सहारा अफ्रीका में हुई, जबकि 69000 (24 प्रतिशत) मौतें दक्षिण एशिया में हुई. यह रिपोर्ट बताती है कि भारत में 50 हजार (17 प्रतिशत) और नाइजीरिया में 40 हजार (14 प्रतिशत) महिलाओं की मातृत्व मृत्यु हुई. भारत उन 10 देशों में शुमार है, जहाँ दुनिया की 58 फीसदी मातृ मृत्यु होती हैं. हो सकता है बाकी के नौ देशों के नाम सुनकर आप थोड़ा चौंके. ये हैं – नाइजीरिया, कांगो, इथियोपिया, इंडोनेशिया, पाकिस्तान, तंजानिया, कीनिया, चीन और उगांडा. हमारे यहाँ पिछले दस वर्षों में संस्थागत प्रसव के रास्ते से इस स्थिति को पलटने की कोशिश की गयी, एक हद तक उसका असर हुआ; परन्तु जब देश में स्त्री रोग विशेषज्ञों और चिकित्सकों के 40 प्रतिशत पद खाली पड़े हों, ढाई हजार की जनसँख्या पर अस्पतालों में एक बिस्तर हो, दवाएं और जांच की सुविधाएँ न हों, वहाँ संस्थागत प्रसव से सुरक्षित मातृत्व लाने की पहल एक स्तर के बाद दम तोड़ चुकी थी. सबसे आश्चर्य की बात यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी मातृ मृत्यु अनुपात से सम्बंधित सहस्राब्दी विकास लक्ष्य को हासिल करने की रणनीति में मातृत्व हकों की पुरजोर तरीके से वकालत नहीं की.

आज भी यही माना जा रहा है कि यदि प्रसव अस्पताल में हो जायेंगे, तो महिलाओं के प्रति हम सबकी जिम्मेदारी पूरी हो जाती है. आज यह सबसे बड़ी जरूरत है कि समाज और सरकार मातृत्व हक की जरूरत और जिम्मेदारी को महसूस करे. स्त्री की जीवन को केवल 48 घंटे के लिए अस्पताल नहीं बल्कि एक ऐसी संवेदनशील व्यवस्था चाहिए, जहाँ उसे सुरक्षित होने का अहसास हो.

प्रजनन की प्रक्रिया महिलाओं के लिए केवल शारीरिक तौर पर की पीड़ादायक नहीं होती है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक रूप से भी झकझोर देने वाली होती है. हमारे स्वास्थ्य और सुरक्षित मातृत्व के जागरूकता कार्यक्रम सन्देश देते हैं कि गर्भावस्था से समय महिला को पर्याप्त आराम करना चाहिए (असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं के लिए एक दिन भी काम से दूर रहना लगभग असंभव होता है क्योंकि मजदूरी मारी जायेगी, इसलिए वह लगभग प्रसव के समय तक श्रम करती हैं). दूसरा सन्देश होता है कि महिला को पूरा पोषण लेना चाहिए. राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 68वें चक्र की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में गांव में एक व्यक्ति अपने भोजन में दाल पर 1.31 रूपए, दूध से बनी सामग्री पर 3.83 रूपए, अंडा मांस-मछली पर 2.28 रूपए ही खर्च कर पाता है. शहरी भारत के हालात भी इससे कुछ बेहतर नहीं हैं. वहाँ दाल पर एक व्यक्ति एक दिन में 1.70 रूपए और अंडा-मांस-मछली पर 3.2 रूपए ही खर्च कर पाता है. इन परिस्थितियों में गर्भवस्था के दौरान महिलाओं को कितना पोषण मिला पाता होगा, जरा अनुमान लगा लीजिए. भारत में गरीबी एक सीधी-सादी स्थिति नहीं है. इसमें आर्थिक विपन्नता है, जातिगत भेदभाव और सामंतवाद है, उपेक्षा है, लैंगिक उत्पीडन है, इसमें गैर-जवाबदेयता और बहु-आयामी भ्रष्टाचार भी शामिल है. गरीबी का यह महीन जाल महिलाओं की जिंदगी को जंग का मैदान बना देता है, जहाँ उससे संघर्ष के हथियार भी छीन लिए जाते हैं. वह कोई एक लड़ाई ही नहीं लड़ती है, वह कई लड़ाईयां लड़ती है. उनमें से एक सुरक्षित मातृत्व की भी है.

भारत में मातृत्व हकों को नीति के गलियारों में कभी ज्यादा तवज्जो नहीं मिली. वर्ष 1961 में मातृत्व हक कानून बनाया गया. कई मायनों में यह एक प्रगतिशील और दूरदृष्टि से भरा कदम था. किन्तु भारत में 21वीं सदी की सरकारों द्वारा बनायी गयी योजनाओं में कई स्तरों पर नासमझी झलकती है. 15 अगस्त 1995 से लागू हुई राष्ट्रीय मातृत्व सहायता योजना में 19 वर्ष की उम्र और अधिकतम दो बच्चों तक ही मातृत्व सहायता का प्रावधान किया गया. हमारी सरकार बहुत नादान है; वह नहीं जानती कि लड़की के विवाह और गर्भवती होने के मामले में स्त्रियों को निर्णय लेने की कोई आजादी नहीं है. इसके बाद इस योजना में शर्त रखी गयी कि केवल गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाली महिलाओं को ही यह सहायता मिलेगी, जबकि आज तक गरीबों की पहचान की ही नहीं जा सकी है. सरकार को वर्ष 1999 में एक

अध्ययन के बाद योजना आयोग ने बता दिया था कि इस योजना में दी जाने वाली राशि (500 रूपए) बहुत कम है. फिर भी उसे बढ़ाया नहीं गया.

इसके बाद अप्रैल 2006 में जननी सुरक्षा योजना लागू हुई. इसमें पहले वाली मातृत्व सहायता योजना को मिला दिया गया. इस योजना के मुताबिक यदि घर में प्रसव होगा तो 500 रूपए की और यदि स्वास्थ्य केंद्र में प्रसव होगा तो गांव में 1400 और शहर में 1000 रूपए की सहायता मिलेगी. सरकार यहाँ भी नादान थी, इसीलिए जननी सुरक्षा योजना में हितग्राही को गर्भवस्था के दौरान नहीं (जबकि पोषण और आराम के लिए उन्हें आर्थिक सहयोग की बेहद जरूरत होती है), बल्कि प्रसव के बाद आर्थिक सहायता दिए जाने का प्रावधान किया गया. इसके बाद खूब भ्रष्टाचार भी हुआ. वास्तव में जननी सुरक्षा योजना मातृत्व हक का कार्यक्रम नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसका मकसद महज संस्थागत प्रसव बढ़ाना था, स्त्री और बच्चे की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए दोनों को 48 घंटे अस्पताल में रखने के बजाये, उन्हें प्रसव के 4 से 6 घंटे बाद ही रवाना कर दिया जाता रहा है.

भारत में मातृत्व हक कार्यक्रमों का इतिहास 50 साल पुराना है. यहाँ केंद्र और राज्य सरकारों के द्वारा 19 मातृत्व हक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, पर 96 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में और अपने घरों में परिवार का काम करने वाली महिलाओं के लिए एक भी कार्यक्रम और कानूनी प्रावधान नहीं किया गया. मौजूदा मातृत्व हक कार्यक्रमों में मातृत्व लाभ पाने के लिए जो शर्तें (उम्र का 19 वर्ष होना, दो बच्चों तक लाभ दिया जाना, संस्थागत प्रसव अनिवार्य होना आदि) लगाई गयी हैं, उनका अध्ययन करके टाटा इंस्टीट्यूट आफ सोशल साइंसेस ने बताया कि 10.1 करोड़ कामकाजी महिलाओं में से 10 करोड़ महिलायें यानी 99.7 प्रतिशत महिलायें मातृत्व हक की अपात्र हो जाती हैं.

वर्ष 2013 में बना राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून पहली बार यह प्रावधान करता है कि हर महिला को मातृत्व हक के रूप में 6000 रूपए की आर्थिक सहायता दी जायेगी. इस सन्दर्भ में हमें तमिलनाडु सरकार का उदाहरण लेना चाहिए, जहाँ वर्ष 1987 से डा. मुत्थुलक्ष्मी रेड्डी मातृत्व सहायता योजना चल रही है. इसमें गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाली महिलाओं को दो किशतों में 12 हजार रूपए की सहायता दी जाती है. वर्ष 2006 से 2011 के बीच हर रोज औसतन 1600 महिलाओं को इसका लाभ दिया गया. इस योजना पर अध्ययन भी हुए, पर वहाँ भ्रष्टाचार के कोई प्रमाण नहीं मिले. इसी योजना की तर्ज पर केंद्र सरकार ने इंदिरा गाँधी मातृत्व सहयोग योजना शुरू की, पर लाभ लेने के लिए लगाई गयी शर्तें आखिरकार महिलाओं को ही सजा दे रही हैं. सरकार की उपेक्षा देखिये कि एक प्रयोग के तौर पर शुरू की गयी इस योजना का क्रियान्वयन भी 52 चुनिन्दा जिलों से आगे नहीं बढ़ाया गया है.

मौजूदा स्थिति में 20 करोड़ महिलायें परिवार में रहकर परिश्रम करती हैं. उनके काम को नापने के लिए कोई अधिकृत व्यवस्था भी नहीं है. ऐसे में उनके मातृत्व हकों को सुनिश्चित करना एक बड़ी और महत्वपूर्ण चुनौती है. बेहतर होगा कि राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के तहत किये गए “कम से कम 6000 रूपए के प्रसूति लाभ” को नौ माह (प्रसव के पहले तीन माह और प्रसव के बाद छह माह, ताकि बच्चे के स्तनपान के हक को भी सुनिश्चित किया जा सके) के न्यूनतम मजदूरी के साथ अवकाश से जोड़ दिया जाए. सरकार को बस एक निर्णयात्मक पहल करना होगी. यह पहल न केवल मातृ मृत्यु को बहुत कम करेगी, बल्कि महिलाओं की ताकत को एक नया आयाम देगी.

संपर्क

विकास संवाद

ई-7/226, प्रथम तल, धनवंतरी काम्प्लेक्स के सामने,

अरेरा कालोनी, शाहपुरा, भोपाल, मध्यप्रदेश

0755 4252789 / 9977704847